Vol. 7 Issue II Dec 2016 ISSN 0976-6588

A Bi-Annual, Peer Reviewed, UGC Approved, Publication of AICPE, New Delhi

AICPE HUMAN KINETIC

A Journal of Physical Education and Fitness

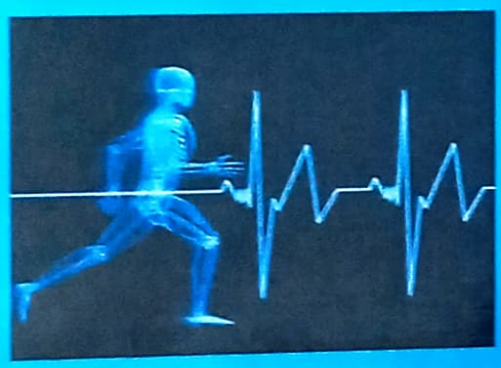

"Strength does not Come from Winning.
Your Struggles Develop Your Strengths.
When you go Through Hardships and Decide
Not to Surrender, That is Strength."

---------- Arnold Schwarzenegger

Editor - Dr. Satyant Kumar

AICPE Human Kinetics

Published by

All India Council of Physical Education
New Delhi (India)

© With the Publisher

Issue - II Vol. 7 Dec 2016

ISSN 0976 - 6588

Barcode

Printed by **Manyata Prakashan**
Publishers & Printers
60 - C Mayakunj Mayapuri,
New Delhi - 110064 (India)

Tele 011 - 2540 7546, 2513 7546
9999 88 9290, 98110 14522

mail at manyataprakashan@gmail.com
manyata_prakashan@yahoo.com

Computer Typesetting Printrades New Delhi - 110064

10.	Attitude towards Physical Activities among Rural College going Women Students of Saharanpur District **Dr. Reena Walia**	----------	40
11.	The Study of Indian Women in Regards to Physical Activity and Stress Management **Dr. Shikha Sharma** **Dr. Sophie Titus**	----------	45
12.	Yoga : A Growing Business **Dr. Bharti Sharma**	----------	50
13.	A Comparative effect of different Variations of Suryabhedana Pranayama on Positive Breath Holding time **Aditya Gadewal** **Anurodh Singh Sisodia**	----------	53
14.	Effect of Explosive Strength and Endurance Training on the Football skill performance **Dr. Aman Singh Sisodiya** **Mr. Sunil Prasad**	----------	60
15.	Comparative study of Physical Fitness Component between Male and Female of Jhansi District **Anil Kumar Jharbade**	----------	65
16.	Effect of Super Circuit Training on Leg Strength of University Men Players **Dr. Satyant Kumar**	----------	71
17.	Gender Taboos and Barriers in Indian Sports **Dr. Vivek Solanki** **Dr. Jyoti Solanki**	----------	74
18.	A Comparative Effect of Selected Yogic Intervention Strategies on Fasting Blood Glucose - Pilot Study **Dr. Diwakar Pal**	----------	81
19.	A Comparative Study of Selected Physiological Variables Between Men Netball and Handball Players **Ms. Babita Goel,** **Dr. Satyant Kumar**	----------	85
20.	Standardization of Phyisical Fitness Norms for Higher Secondary School Boys of Bhopal **Dr. Upendra Singh Tomar**	----------	88
21.	योगदर्शन में ईश्वर **डॉ. नीलमशर्मा**	----------	92

21

योगदर्शन में ईश्वर

डॉ. नीलमशर्मा, असिस्टेंट प्रोफेसर संस्कृतविभाग,
कुमारी मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बादलपुर (उ.प्र.)
neelamsharma.du@gmail.com

विविध दार्शनिक सम्प्रदाय प्रारम्भ से ही उस परमतत्त्व के अन्वेशण में संलग्न रहे हैं, जो इस रहस्यमय विश्व की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का कारण है। जो सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक है। जो अत्यन्त करुणावान् होने के कारण समस्त दुःखों से मुक्त कर अत्यधिक आनन्द प्रदान करने वाला है। उसी परमतत्त्व को दार्शनिकों ने ईश्वर, ब्रह्म आदि नामों से सम्बोधित किया है। यद्यपि धार्मिक मनुष्यों के लिए ईश्वर स्वयं सिद्ध सत्ता है, क्योंकि उनकी मान्यता है कि सीमित मानवीय बुद्धि से अनन्त और असीम ईश्वर का ज्ञान अप्राप्य है। किन्तु दार्शनिक सम्प्रदायों में यह ईश्वर आस्था और विश्वास पर नहीं, अपितु तर्कसम्मत आधार पर ही सिद्ध और स्वीकृत है। इसीलिये भारतीय दर्शन में इस ईश्वर की सत्ता, स्वरुप, कार्य तथा जीव और जगत् के साथ उसके सम्बन्धों को लेकर बहुआयामी चिंतन हुआ है, जिससे विविध दर्शनों में ईश्वर विशयक धारणा भिन्न–भिन्न है। तथापि ईश्वर प्रायः सृष्टि का उपादान और निमित्त कारण, वेदों का रचयिता, जीवों को उनके कर्मफलों का दाता और ध्यान के लिए उदात्त ध्येय या परम प्राप्तव्य रूप में स्वीकार किया गया है।

इसी चिन्तन परम्परा में योगदर्शन में भी ईश्वर विषयक विस्तृत चिन्तन हुआ है। यद्यपि सांख्यदर्शन की तत्त्वमीमांसीय और ज्ञानमीमांसीय पृष्ठभूमि पर योगदर्शन व्यवस्थित है। यहां सांख्यदर्शन के 25 तत्त्वों, द्वैतवाद, सत्कार्यवाद, प्रकृतिपरिणामवाद, त्रैगुण्यवाद, विकासवाद तथा त्रिविध प्रमाणों को ग्रहण किया गया है। किन्तु यहाँ सांख्यदर्शन के 25 तत्त्वों से भिन्न 26 वें तत्त्व के रुप में ईश्वर तत्त्व को स्वीकार किया गया है। इसीलिये कदाचित् सांख्यदर्शन को निरीश्वरसांख्य और योगदर्शन को सेष्वर सांख्य कहा जाता है। इस पतंजलि प्रवर्तित योगदर्शन में ईश्वर का क्या स्वरूप है? उसका क्या महत्त्व है? यह पतंजलि, व्यास, वाचस्पतिमिश्र, भोजदेव, विज्ञानभिक्षु आदि ने विषदरुपेण निरूपित किया है। इनके आधार पर यहाँ ईश्वरीय स्वरूप प्रस्तुतीकरण का प्रयास किया गया है। जिसे कुछ बिन्दुओं में विभाजित कर स्पष्ट किया जा सकता है। तदनुरूप ईश्वर का स्वरूप इस प्रकार है –

पुरुष विशेष –ईश्वर स्वरूप विषयक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सूत्र है – ''क्लेशकर्मविपाकाशयैरप–रामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः''[1] अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेश एवं अभिनिवेशादि पाँच क्लेशों, शुभाशुभ कर्मों, उनके फलस्वरूप जाति, आयु एवं भोग तथा संस्कार रूप वासना से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है।

यहाँ एक शंका होती है कि पुरुष तो स्वरूपतः ही इन क्लेश, कर्म, विपाक, तथा आशय से रहित होता है तो फिर यहाँ पुरुष विशेष ईश्वर अभाव का कथन क्यों किया गया है? किन्तु यह शंका समुचित नहीं है, क्योंकि यद्यपि पुरुष इन क्लेशादि से रहित है और ये क्लेशादि बुद्धि के धर्म हैं, तथापि अविद्यावष इनका आरोप पुरुष पर कर दिया जाता है। जिससे वह इनसे सम्पृक्त प्रतीत होता है और बुद्धिगत

सुख–दुःख आदि धर्मों का भोक्ता कहा जाता है।[2] भोगों से सर्वथा अपरामृष्ट है।[3] इसी कारण से ईश्वर बद्ध पुरुषों से विशेष है। यह ईश्वर मुक्त और प्रकृतिलीन या विदेह पुरुषों से भी विशेष है, क्योंकि मुक्त पुरुष मुक्तावस्था से पूर्व बन्धन में थे और प्रकृतिलीन या विदेह पुरुषों में उत्तरकालिक बन्धन संभव है। किन्तु ईश्वर तो बन्धन से सदा मुक्त है, वह न कभी बन्धन में था और न होगा।[4] उसमें सामान्य पुरुशों की भांति कदापि औपाधिक योग संभव नहीं है। अतः वह पुरुषों में विशेष पुरुषविशेष कहा गया है।[5]

सर्वज्ञ –ईश्वर को समस्त पदार्थों का सभी कालों में पूर्ण ज्ञान होता है। उसमें सर्वज्ञता का बीज अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त होता है।[6] यहाँ ईश्वर की सर्वज्ञता सिद्धि में अनुमान प्रमाण का प्रयोग किया गया है। संसार के जितने भी पदार्थ हैं, उनमें न्यूनाधिक भाव हैं और जिस–जिसमें न्यूनाधिक होता है, वह अवश्य चरमावधि को प्राप्त होता है– जैसे परिमाण। उसी प्रकार ज्ञान जहाँ वृद्धि को प्राप्त होता हुआ निरतिशय रूप काष्ठा को प्राप्त करता है, वह सर्वज्ञ कहलाता है और वह ईश्वर है।[7] क्योंकि सामान्य पुरुषों में से किसी को अतीत, वर्तमान और अनागत पदार्थों में से अतीतकालीन किञ्चिद् पदार्थों का, किसी को वर्तमान तो किसी को अनागत किञ्चिद् पदार्थों का किञ्चिद् ज्ञान होता है। किन्तु ईश्वर तो संसार के समस्त त्रैकालिक पदार्थों का यथार्थ और पूर्ण ज्ञाता है। अतः ईश्वर की सर्वज्ञता निरतिशय है, क्योंकि उससे अधिक ज्ञानवान् कोई नही। ईश्वर के इस शाष्वतिक उत्कर्ष में शास्त्र या वेद भी प्रमाण है। यद्यपि शास्त्र का प्रमाण ईश्वर ही है, तथापि इन दोनों में अनादि सम्बन्ध होने से अन्योन्याश्रय दोश नहीं मानना चाहिये।[8]

सर्वाधिक ऐश्वर्यवान् – ईश्वर निरतिशय ऐश्वर्य सम्पन्न है। ईश्वर का ऐश्वर्य समानता तथा अतिशय से रहित है।[9] अर्थात् किसी भी अन्य पुरुष का ऐश्वर्य न तो ईश्वर के ऐश्वर्य के समतुल्य है और न ही उससे अधिक। यहाँ यह शंका हो सकती है कि सिद्धि प्राप्त योगी भी विविध ऐश्वर्यों से सम्पन्न होते हैं। किन्तु यह शंका उचित नहीं क्योंकि उनमें ऐश्वर्य न्यूनाधिक परिमाण में अर्थात् सातिशय होता है। इस सातिशय ऐश्वर्यों की निरतिषयता जहाँ है, वह ईश्वर है। ईश्वर में ऐश्वर्य की पराकाष्ठा प्राप्त होती है।[10]

अद्वितीय – यद्यपि सांख्ययोगदर्शन में पुरुष अनेक माने गये हैं, किन्तु पुरुष विशेष ईश्वर एक ही है, क्योंकि यदि समानकोटि के अनेक ईश्वर माने जाये तो परस्पर विरोधात्मक स्थिति उत्पन्न हो जायेगी और कोई भी 'ईश्वर' पद वाच्य नहीं होगा। साथ ही किसो कार्य के विषय में इच्छा वैभिन्न्य होने पर किसी एक के अनुसार कार्योत्पत्ति से अन्य में न्यूनता आ जायेगी।[11] यदि यहाँ विचार किया जाये तो जिसके अनुसार कार्य हो वही वस्तुतः ईश्वर कहलाने के योग्य है। अतः ईश्वर एक ही है। यहाँ वाचस्पति मिश्र एक अन्य तर्क देते हैं कि यदि समतुल्य अनेक ईश्वरों में इच्छा साम्य भी है, तो यदि सब सर्वथा समान हैं तो किसी एक ही ईश्वर से कार्य हो जायेगा, अनेक ईश्वरों की कल्पना व्यर्थ है और यदि वे सामूहिक रूप से कार्य करते हैं तो किसी को भी ईश्वर नहीं कहा जा सकता।[12] अतः ईश्वर एक ही हो सकता है।

आदि गुरु –ईश्वर काल से अवच्छिन्न न होने के कारण पूर्ववर्ती गुरुओं का भी गुरु है।[13] यहाँ पूर्वोत्पन्न गुरुओं से तात्पर्य सर्ग के प्रारम्भ में उत्पन्न ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि गुरुओं से है।[14]

(i) संप्रति भगवतो ब्रह्मादिभ्यो विषेशमाह – स एष इति, तत्त्ववैषारदी, प . सं. 81

ईश्वर इन्हें वेदादि का ज्ञान प्रदान करता है और उसकी यह गुरुता त्रैकालिक है। वह वर्तमान सृष्टि के समान विगत सृष्टियों के पूर्व भी विद्यमान था। वह समस्त प्राणियों को ज्ञान और धर्म का उपदेश

देता है। यहाँ ध्यातव्य है कि विज्ञानभिक्षु ने गुरुपद से पिता अर्थ लिया है।[15] और ईश्वर को सभी का जनक माना है। इसी के आधार पर उन्होंने योगदर्शन में सर्वप्रथम जीवेश्वर सम्बन्ध को प्रकाशित करने का प्रयास किया है। उनके अनुसार जीव और ईश्वर में अंश–अंशी सम्बन्ध है। ईश्वर अंशी है और जीव उसका अंश। अनन्त जीवांशों का अंशी ईश्वर के साथ पिता और पुत्र, अग्नि तथा विस्फुलिङ्ग के समान अविभाज्य सम्बन्ध है।[16]

सृष्टि का निमित्त कारण – योगदर्शन में ईश्वर सृष्टि के निमित्त कारण के रूप में स्वीकार किया गया है। यद्यपि योगसूत्रकार पतंजलि ने सृष्ट्युत्पत्ति में ईश्वर की किसी भी भूमिका को स्वीकार नहीं किया है। और भाष्यकार व्यास ने भी इस सन्दर्भ में स्पष्टतः तो कोई उल्लेख नहीं किया है, तथापि अणिमादि सिद्धियों के निरुपणप्रसंग में वे कहते हैं कि सिद्धिप्राप्त योगी भूत और भौतिक पदार्थों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश में समर्थ होने पर भी उनमें कुछ परिवर्तन नहीं करता, क्योंकि उन पदार्थों का स्वरूप पूर्वसिद्ध के सत्यसंकल्पानुरुप है। अर्थात् पूर्वसिद्ध वस्तुओं को इसी रूप में चाहता है।[17] यह पूर्वसिद्ध ईश्वर ही है। इससे यहाँ सृष्ट्युत्पत्ति में ईश्वर के कर्त्ता होने का संकेत प्राप्त होता है। किन्तु परवर्ती योगदार्शनिक वाचस्पतिमिश्र, भोजदेव, विज्ञानभिक्षु आदि ने स्पष्टरूपेण ईश्वर को सृष्टि का निमित्त कारण स्वीकार किया है। वाचस्पतिमिश्र कहते हैं कि प्रकृति का प्रवर्तक पुरुषार्थ (पुरुष का प्रयोजन) नहीं हो सकता क्योंकि वह अभी सिद्ध नहीं है। यहाँ ईश्वर ही धर्म के स्थापनार्थ प्रतिबन्धों को दूर करता है और उसी के प्रयत्न से धर्म अपना कार्य उत्पन्न करता है।[18] वे नित्यतृप्त ईश्वर की सृष्टि रचना में प्रवृत्ति का कारण उसका प्राणियों पर अनुग्रह ही मानते हैं।[19] किन्तु सुखदुखादिमिश्रित इस सृष्टि के कारण उसे अकारुणिक नहीं मानना चाहिये। वह परमकरुणावान् है। वह प्राणियों के जात्यायु एवं भोग स्वेच्छा से ही प्रदान नहीं करता वरन् उनके द्वारा पूर्वजन्मों में किये गये शुभाशुभ कर्मों के फलस्वरूप ही सुखदुखादि प्रदान करता है।[20]

विज्ञान भिक्षु के अनुसार प्रकृति की साम्यावस्था में क्षोभ उत्पन्न करने के कारण ईश्वर सृष्टि का उद्‌बोधक है।[21] एक अन्य स्थल पर अत्यन्त स्पष्ट षब्दों में वे प्रकृति के वैशम्य अर्थात् सृष्टिकाल में होने वाले परिणामस्वरूप क्षोभ का कारण ईश्वर की इच्छा को ही मानते हैं।[22] तथापि इससे प्रकृतिस्वातंत्र्य का सिद्धान्त बाधित नहीं होता क्योंकि ईश्वर तो निमित्त मात्र ही है।[23] भोजदेव ने भी ईश्वर को ही प्रकृति एवं पुरुष के संयोग वियोग का कारण माना है।[24] इस प्रकार ईश्वर को सृष्टि का निमित्त कारण माना गया है और वह जीवों के कर्मफलानुसार ही इसमें प्रवृत्त होता है। यहाँ ध्यातव्य है कि सृष्टि का उपादान कारण तो प्रकृति ही है। डॉ. एस.एन्. दासगुप्ता ने भी अत्यन्त सरल और स्पष्ट शब्दों में ईश्वर की निमित्त कारणता प्रतिपादित की है। उनके अनुसार ईश्वरेच्छा से ही प्रतिबन्धों का निवारण और पुरुषार्थता की सिद्धि हेतु गुणों द्वारा एक नियत क्रम का अनुगमन सम्भव हो पाता है। ईश्वर प्रकृति को जन्म नहीं देता, अपितु वह प्रकृति के साम्य को निष्क्रियता की अवस्था से विचलित कर देता है और बाद में एक ऐसी चेतन व्यवस्था के अनुगमन में उसका सहायक होता है, जिससे कर्मों का फल भलीभाँति विभाजित हो और सर्षिट में व्यवस्था रहे।[25]

मोक्ष प्राप्ति का साधन – सूत्रकार एवं भाष्यकार ने मुख्यतः मोक्ष प्राप्ति के साधनरूप में ही ईश्वर को स्वीकार किया है। योगसूत्र में ईश्वर विशयक सर्वप्रथम सूत्र ही है– ईश्वर प्रणिधानाद्वा[26] अर्थात्

असंप्रज्ञात समाधि के अंग रूप में ही ईश्वर के ध्यान का महत्त्व है। योगदर्शन में इस ईश्वर प्रणिधान का महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि विभिन्न कोटि के साधकों के लिये यह मोक्षोपलब्धि का सुगम साधन है। पतंजलि ने इस ईश्वर प्रणिधान का निर्देश तीन स्थलों पर किया है – 1. समाधि पाद में[27], 2. साधनपाद के क्रियायोग[28] और 3. अष्टांगयोगान्तर्गत नियमों[29] में। संभवतः यह उत्तम, मध्यम और अधम साधकों को दृष्टि में रखकर किया गया है। इसलिये भिन्न–भिन्न स्थलों पर ईश्वर प्रणिधान का तात्पर्य भी भिन्न है। जहाँ समाधिपाद में यह ईश्वर के प्रति भक्ति अर्थ में है।[30] वहीं क्रियायोग और नियमों के अन्तर्गत इसका तात्पर्य है– अपने समस्त कर्मों को परमगुरु ईश्वर में समर्पित करना अथवा कृत कर्मों के फल की इच्छा न करना अर्थात् निष्कामभाव से कर्म करना।[31]

यह ईश्वरप्रणिधान अन्य सभी योगांगो में श्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि यह समाधि की सिद्धि का मुख्य हेतु है।[32] इससे साधक को अतिशीघ्र समाधिलाभ एवं समाधिफल की प्राप्ति होती है।[33] साथ ही इससे समाधिकाल में आने वाले समस्त विघ्नों का नाश हो जाता है।[34] किन्तु यहाँ यह शंका नहीं करनी चाहिये कि जब ईश्वर प्रणिधान से ही मोक्ष प्राप्ति संभव है, तो अन्य योगांग व्यर्थ है, क्योंकि वाचस्पतिमिश्र के अनुसार अन्य योगांग प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से ईश्वर प्रणिधान की सिद्धि में सहायक हैं।[35]

किन्तु यह ईश्वरप्रणिधान कैसे किया जाये? इसके लिये योगदर्शन में प्रणव के जप का विधान है। प्रणव ईश्वर का वाचक है।[36] इसलिये प्रणव का जप और जापकाल में इसके अभिधेय ईश्वर के विषय में चिन्तन करना चाहिये।[37]

इस प्रकार यहाँ ईश्वर आत्मसाक्षात्कार रूप मोक्ष प्राप्ति में सहायक रूप में है। किन्तु विज्ञानभिक्षु ने ईश्वर को अत्यधिक महत्त्व प्रदान करते हुए जीवात्म–साक्षात्कार की अपेक्षा परमात्मसाक्षात्कार को श्रेष्ठ बतलाया है। उनके अनुसार परमात्म साक्षात्कार मुख्य और जीवात्मसाक्षात्कार गौण है।[38] टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित सर्वमतसंग्रह में भी परमेश्वर की प्राप्ति ही योग दर्शन सम्मत मुक्ति है।[39]

इस प्रकार उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन से स्पष्ट है कि योगदर्शन में क्लेशादि से सर्वथा अपरामृष्ट पुरुष विशेष ईश्वर अनेक पूर्ण गुणों से युक्त है। वह निरतिशय ऐश्वर्यवान्, सर्वज्ञ, आदि गुरु, करुणावान् और एक है। यद्यपि प्रारम्भिक योगदर्षन में जगत् के सृज्जन में ईष्वर का कोई उपयोग नहीं है, तथापि साधक को अल्प प्रयास से मोक्षप्राप्ति के साधनभूत असम्प्रज्ञात समाधि तक पहुँचाने में ईश्वर चिन्तन और उससे प्राप्त ईश्वर की कृपा ही सर्वोत्तम उपाय है। अर्थात् यहाँ ईश्वर समाधि के अंग रूप में ध्यान केन्द्रित करने के लिये ही स्वीकार किया गया है। अतः मोक्ष प्राप्ति में उसका महत्त्व होने पर भी है, तो वह साधन रूप ही। किन्तु परवर्ती योगाचार्यों वाचस्पतिमिश्र, भोजदेव, विज्ञानभिक्षु आदि ने ईश्वर को सृष्टि रचना में निमित्त कारण और जीव के कर्मफलों के दाता रूप में मानते हुए उसे महत्त्वपूर्ण स्थानाभिशिक्त कर दिया। यहाँ तक कि इन्होंने ईश्वर की इच्छा के बिना सृष्टि को असंभव माना। इससे भी अधिक आचार्य विज्ञानभिक्षु ने तो जीवात्म साक्षात्कार के स्थान पर परमात्म साक्षात्कार को श्रेष्ठ बताते हुए परमप्राप्तव्य रूप में ईश्वर को साध्य बना दिया। इस प्रकार योगदर्शन में ईश्वर का महत्त्व अत्यधिक बढ़ा दिया। अतः योगदर्शन में ईश्वर का अद्वितीय स्थान है।

सन्दर्भ

1. योगसूत्र – 1/24, पातञ्जलयोगदर्शनम्, पतञ्जलि, व्यासभाष्य सहित, (सम्पा.) सुरेशचन्द्र, श्रीवास्तव्यशास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 1993
2. योगसूत्र – 1/24 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 80
3. ''यो ह्यनेन भोगेनापरामर्ष्टः स पुरुषविशेश ईश्वर'', योगसूत्र – 1/24 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 80
4. योगसूत्र – 1/24 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 80
5. पुरुषविशेषः अन्येभ्यः पुरुषेभ्यो विशिष्यते इति विशेशः, योगसूत्र – 1/24 पर भोजवृत्तिः, पृ. सं. 29, योगसूत्रम्, पतञ्जलि, भोज कृत राजमार्तण्ड या भोजकृत्ति, भावगणेश कृत प्रदीप, नागोजी भट्ट कृत वृत्ति, रामानन्द कृत मणिप्रभा, अनन्तदेव कृत चन्द्रिका व सदाषिवेन्द्रसरस्वती कृत योगसुधा सहित, (सम्पा.) ढुण्ढिराज शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
6. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्, योगसूत्र 1/25
7. योगसूत्र – 1/25 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 88
8. योगसूत्र – 1/24 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 80
9. तच्च तस्यैष्वर्यं साम्यातिषयविनिर्मुक्तम्, योगसूत्र – 1/24 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 80
10. (i) तस्माद्यत्र काष्ठाप्राप्तिरैष्वर्यस्य स ईश्वरः, योगसूत्र – 1/24 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 80
    (ii) ऐश्वर्येण यत्र काष्ठा प्राप्यते स ईश्वर इत्यर्थः, योगवार्तिक, पृ. सं. 74, पातञ्जलयोगदर्शनम्, पतञ्जलि, व्यासभाष्य, वाचस्पतिमिश्र कृत तत्त्ववैशारदी, विज्ञानभिक्षु कृत योगवार्त्तिक सहित, (सम्पा) नारायण मिश्र, भारतीय विद्या प्रकाषन, वाराणसी, 1982
11. (i) ''प्राकाम्यमविहतेच्छता। तद्विघातादूनत्वम्'', तत्त्ववैषारदी, पृ. सं. 69,
    (ii) ''एकस्य सिद्धौ संकल्पसिद्धावितरस्येच्छाविघातादूनत्वं न्यूनत्वं स्यादतो न समानानेकेश्वरसम्भव'', योगवार्तिक, पृ. सं. 74
12. अविरुद्धाभिप्रायत्वे च प्रत्येकमीष्वरत्वे कृतमन्यैरेकेनैनेषनायाः कृतत्वात्। संभूयकारित्वे वा न कश्चिदीश्वरः परिशद्वत्। तत्त्ववैशारदी, पृ. सं. 70
13. पूर्वेशामपि गुरुः कालेनावच्छेरात्, योगसूत्र – 1/26
    (ii) पूर्वेशां पूर्वपूर्वसर्गाद्युत्पन्नानां ब्रह्म विष्णुमहेश्वरादीनामपि गुरुः, योगवर्त्तिक, पृ. सं. 81
15. गुरुः = पिताऽन्तर्यामी विद्यया ज्ञानचक्षुः प्रदश्च, योगवार्त्तिक, पृ. सं. 81
16. श्रुत्युक्ताग्निविस्फुलिङ्गदृष्टान्तानुसारेण च जीवब्रह्मणोरंशांशिभावस्तयोरभेदश्च पितापुत्रवदेव इति भावः, योगवार्त्तिक, पृ. सं. 81
17. न च शक्तोऽपि पदार्थविपर्यासं करोति। कस्मात्? अन्यस्य यत्र कामावसायिनः पूर्वसिद्धस्य तथा भूतेशु संकल्पात्, योगसूत्र – 3/45 पर व्यासभाष्य, पृ. सं. 457
18. स्वतन्त्रस्य च प्रयोजकत्वात्। न च पुरुशार्थोऽपि प्रवर्तकः, किं तु तदुद्देशेनेश्वरः। ..... ईश्वरस्यापि धर्माधिष्ठानार्थं प्रतिबन्धापनय एव व्यापारो वेदितव्यः, तत्त्ववैशारदी, पृ. सं. 399
19. तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपीति। भूतानाम् प्राणिनामनुग्रहः प्रयोजनम्। तत्त्ववैषारदी, पृ. सं. 78
20. तेनाचरितार्थत्वाच्चित्तस्य जन्तूनीश्वरः पुण्यापुण्यसहायः सुखदुःखे भावयन्नपि नाकारुणिकः, तत्त्ववैशारदी,

पृ. सं. 73
21. ईश्वरस्तु साम्यपरिणामादिरुपारिवलावरणभङ्गेनोद्बोधकः, योगवार्त्तिक पृ. सं. 73
22. प्रकृतेर्वैशम्यहेतुः क्षोभोऽपीश्वरेच्छात एव, योगवार्तिक, पृ. सं. 73
23. न च प्रकृतिस्वातन्त्र्यक्षतिः निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनाम् इत्यागामि सूत्रात् निमित्तकारणस्येष्वरादेस्तत्स्वा–तन्त्र्याविधातकत्वात्, योगवार्त्तिक, पृ. सं. 81
24. तेन च तथाविधेन सत्त्वेन तस्यानादिरेव सम्बन्धः प्रकृतिपुरुषसंयोगवियोगयोरीष्वरेच्छाव्यतिरेकेणानुपत्तेः, भोजवृत्ति, पृ. सं. 30
25. दासगुप्ता, एस.एन., भारतीयदर्शनशास्त्र का इतिहास, भाग–1, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, 2003 पृ. सं. 243
26. योगसूत्र – 1/23
27. योगसूत्र – 1/23
28. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः, योगसूत्र – 2/1
29. शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेष्वरप्रणिधानानि नियमाः, योगसूत्र – 2/32
30. प्रणिधानाद्भक्तिविशेषादवर्जित ईश्वरस्तमनुगृहणात्यभिध्यानमात्रेण, योगसूत्र – 1/23 पर व्यासभाष्य, पृ. सं.
31. (i) ईश्वरप्रणिधानं सर्वक्रियाणां परमगुरवर्पणं तत्फलसंन्यासो वा, योगसूत्र–2/1 पर व्यासभाष्य, पृ. सं.
(ii) ईश्वरप्रणिधानं तस्मिन्परमगुरौ सर्वकर्मार्पणम्, योगसूत्र – 2/32 पर व्यासभाष्य, पृ. सं.
32. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्, योगसूत्र – 2/45
33. तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतमः समाधिलाभः समाधिफलं च भवतीति, योगसूत्र – 1/23 पर व्याभाष्य, पृ. सं. 78
34. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च, योगसूत्र – 1/29
35. ईश्वरप्रणिधानसिद्धौ दृष्टादृष्टावान्तरव्यापारेण तेषामुपयोगात्, तत्त्ववैशारदी, पृ. सं. 260
36. तस्य वाचकः प्रणवः, योगसूत्र – 1/27
37. तज्जपस्तदर्थभावनम्, योगसूत्र – 1/28
38. (i) एवं च सति मुख्यकल्पानुकल्पभेदेन परमात्मजीवात्मप्रज्ञयोर्योगमोक्षहेतुत्वं बोध्यम्, योगवार्तिक, पृ. सं. 63
(ii) अतः सर्वेषु संप्रज्ञातेषु मध्ये पारमेश्वरयोग एव श्रेष्ठः, योगसारसंग्रह, विज्ञान भिक्षु, (अनु.) गंगानाथ झा, आर्य बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 1986 पृ. सं.
39. इह सेश्वरस्य तत्त्वज्ञानसहितेन योगेन योगिनः परमेश्वरतावाप्तिर्मुक्तिः, सर्वमतसग्रहः, (सम्पा.) टी. गणपति शास्त्री, भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2008 पृ. सं. 31